

प्रकाशक
भारती-मण्डार
 पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता
 रामघाट, बनारस विही

द्वितीय संस्करण
 १)



परिचय

हमारा मानस शीघ्र ही संरन्तागत की समता किया जाता है। तुम्हारी करुणा-शक्ति में यह प्रति दिन अपनी सीमा का विस्तार कर रहा है। हमारी पुराना चामना है कि यह अन्तर्गत हो जाय और पृथ्वी के पार्श्व में लगना हुआ उसे अपनी भर्त्सना का विश्वास दिलाता रहे। संसार के उपवन की यह सरस बनाये रहे, किन्तु उससे निराला रहे। ऐसा न होने से प्रलय की सम्भावना जो है !

जो हो, उसे भी आशा है कि तुम उसे अपने करने के लिए आ रहे हो। इसी में यह तरङ्गों के रूप में अपने बाहु तुम्हारे ग्राहक के लिए बढ़ रहा है। बन्दु-राशि के रूप में अपनी प्रीति उठा रहा है। शक्तियों के रूप में उसने भयान शील रखे हैं। उनमें मोतियों के आभूषण शोभित हो रहे हैं। और, कमलों के रूप में उसने अपने सार्वभौम नेत्र तुम्हारी शोभा देखने के लिए उन्मीलित कर रखे हैं। हे परमपुरुष, तुम अपनी परा प्रकृति के साथ आकर इसकी आशा और अभिलाषा पूरी करो। उसे अपना निवास-स्थान बनाओ और ऐसा करो कि भावी सन्तानें उसे मथ कर सदैव अमृतपान करती रहें।

अहा ! वह देखो, उसके हृदय से प्रेमाग्नि का धूम उठ रहा है और एक छोटे से मेघ का आकार धारण करके अपने अमृत किन्तु स्निग्ध निनाद से तुम्हारी अव्यक्तता को व्यक्त करना चाहता है। वह मयूर उस आगव को सुन कर आनन्द में उन्मत्त हो नाच उठा है। क्या उस कृपा परोक्ष

की गम्भीर ध्वनि तुम्हारे चरणों तक पहुँच न सकेगी ? जो रस उसमें ओत प्रोत भरा है वह तो केवल उसी के हार्दिक भावों से सम्बद्ध है। इसी प्रकार उससे दीप्ति की जो उज्ज्वल रेखा प्रकट होती है वह भी उसी की साधना की स्फूर्ति है। क्या उस ज्योति से तुम्हारे अनन्त पथ पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है ?

इस बात को तुम्हीं जान सकते हो। वह कृष्ण पयोद न यह कहने का साहस करता है, न करना चाहता है, न कर सकता है। और न उसे इस बात का अभिमान है कि उसकी दृष्टि से हमारे मानस की सीमा का विस्तार होगा; अथवा वह उत्साह का उपराम करके हरियाली को उत्पन्न करेगा। यह तो तुम्हारी करुणा-दृष्टि का ही काम है। हाँ, यदि उस पात्र के द्वारा भी तुम्हारी करुणा के दो चार कण बरस गये तो वह भी कृतकृत्य होकर अपने को धन्य समझेगा।

तब वह चाहता क्या है ? केवल यही ही कि मयूर और कोकिलों के साथ अनुरागी चातक भी उसकी आकांक्षा की पूर्ति के लिए एक बार आकाश को गुँजा के—“पी कहों” कह कर तुमको पुकार उठें और उसकी क्षुद्र बारि-धारा तुम्हारे पाय के लिए गिर कर अपना जीवन सकल करे। इसी में उसकी सार्थकता है।

और ? वस ।

धीकाशी
प्रभाष्टमी. ७१

मेथिलीशरण गुप्त

सूची

माधना	१ प्रेम-परिषय	२१
साधना	२ आकांक्षा	२२
सेवा	४ कृपालु कर्णधार	२३
रहस्य	५ अस्थापित्य में स्थापित्य	२४
कुटी और मासाद	६ आतुरता	२५
भूल	७ संसार की भूल	२६
निर्गुण धीना	८ कच्चे घट में अमृत	२७
लज्जा	९ बंधन की आवश्यकता	२८
स्वप्न मात्र	१० आत्म-रक्षा	२९
साहस	११ केवल तुम्हीं	३०
व्यर्थ की खोज	१२ सफल-काम	३१
सहारा	१३ क्रय-विक्रय	३२
धनुराग-विराग	१४ पार्श्वविक मुल्य	३३
प्रेम की प्रबलता	१५ निरुद्देश निर्माण का सफलता	३४
मोहन	१७ धर्मभव	३५
सगठन	१८ मन्त्रा	३६
आनन्द गीत	१९ महता	३७
प्रकृति और कला	२० जगत् का वाग्व	

मुद्रारी माया	३९	समय की सहायता	६१
चक्षिमा	४०	मिथन वेला	६४
अश्विमा	४१	गुप्तन	६५
शक्रा	४२	त्यता	६६
चोडाई और अमावसा	४३	अनन्य संगीत	६७
दुष्टायोग	४४	अभिमान	६८
अयना, पराणा	४५	सुख	७०
आत्मन् की ओर	४६	चदरी	७१
अन्विता	४७	अन्विता	७२
इलायचीय श्राव्य	४८	आहुत, अन्न, सुगुति	७३
कर्मों के अर्थ	४९	अभीष्ट आदेश	७४
अवध	५०	संकीर्ण अर्थ	७५
मुद्रारा रीति	५१	अन्य विधि	७६
मिष्टान्नरीति	५२	माता	७७
अनुराग	५३	गुप्त अर्थ आदेश की	७८
अमाव	५४	अहुत का अर्थ	७९
अनुराग अर्थ	५५	अन्विता	८०
अनुराग अर्थ	५६	अर्थ	८१
अनुराग अर्थ	५७	अर्थ	८२
अनुराग अर्थ	५८	अर्थ	८३
अनुराग अर्थ	५९	अर्थ	८४
अनुराग अर्थ	६०	अर्थ	८५
अनुराग अर्थ	६१	अर्थ	८६
अनुराग अर्थ	६२	अर्थ	८७
अनुराग अर्थ	६३	अर्थ	८८
अनुराग अर्थ	६४	अर्थ	८९
अनुराग अर्थ	६५	अर्थ	९०
अनुराग अर्थ	६६	अर्थ	९१
अनुराग अर्थ	६७	अर्थ	९२
अनुराग अर्थ	६८	अर्थ	९३
अनुराग अर्थ	६९	अर्थ	९४
अनुराग अर्थ	७०	अर्थ	९५
अनुराग अर्थ	७१	अर्थ	९६
अनुराग अर्थ	७२	अर्थ	९७
अनुराग अर्थ	७३	अर्थ	९८
अनुराग अर्थ	७४	अर्थ	९९
अनुराग अर्थ	७५	अर्थ	१००

विदा	९०	पूर्ण-चन्द्र	१००
दांशु	९१	गुम्हारे लिण्	१०१
होरा	९२	विर ममाधि	१०२
वन पाटल	९३	मृत्यु	१०३
पागल अधिक	९४	उद्धार	१०४
अस्पृश्य आयेदन	९५	समुद्र-तट	१०५
मृग-मरीचिका	९७	आधाराधेय	१०७
संदेह	९८	क्रीडास्थल	१०८
अनुरोध	९९	परायलम्ब और स्वायलम्ब	११०

मुम्तासी माला	३९	समय की महानता	३१
अभिमान	४०	मित्रन वेला	३४
अवस्थान	४१	गुम्बज	३५
राष्ट्र	४२	रुखा	३६
ओझाई और अगाधता	४३	अनन्य संगीत	३७
दुष्प्रयोग	४४	अभिमान	३८
अदना, बराणा	४५	सुख	३९
आनन्द की लीला	४६	महरी	४०
अतिथि	४७	अतिथि	४१
इलायचीय स्वाध	४८	आदुल, अन्न, गुणमि	४२
हमों के अर्थ	४९	अमीर आदेश	४३
स्वयम्	५०	संकीर्ण रूप	४४
मुल्दरा कीड़ा	५१	भवन, सिद्धि	४५
विद्वत्बन्धन	५२	माला	४६
महुर मान	५३	गुम स्वयं आदि हा	४७
अमर	५४	इहम की महानता	४८
अधुरी व अना	५५	अतिथि	४९
मुहम्मद की मक्ति	५६	मक्ति	५०
मोदना की महानता	५७	मोदना	५१
अन व मी अना	५८	अन व मी अना	५२
अन व मी अना	५९	अन व मी अना	५३
अन व मी अना	६०	अन व मी अना	५४
अन व मी अना	६१	अन व मी अना	५५
अन व मी अना	६२	अन व मी अना	५६
अन व मी अना	६३	अन व मी अना	५७
अन व मी अना	६४	अन व मी अना	५८
अन व मी अना	६५	अन व मी अना	५९
अन व मी अना	६६	अन व मी अना	६०
अन व मी अना	६७	अन व मी अना	६१
अन व मी अना	६८	अन व मी अना	६२
अन व मी अना	६९	अन व मी अना	६३
अन व मी अना	७०	अन व मी अना	६४
अन व मी अना	७१	अन व मी अना	६५
अन व मी अना	७२	अन व मी अना	६६
अन व मी अना	७३	अन व मी अना	६७
अन व मी अना	७४	अन व मी अना	६८
अन व मी अना	७५	अन व मी अना	६९
अन व मी अना	७६	अन व मी अना	७०
अन व मी अना	७७	अन व मी अना	७१
अन व मी अना	७८	अन व मी अना	७२
अन व मी अना	७९	अन व मी अना	७३
अन व मी अना	८०	अन व मी अना	७४
अन व मी अना	८१	अन व मी अना	७५
अन व मी अना	८२	अन व मी अना	७६
अन व मी अना	८३	अन व मी अना	७७
अन व मी अना	८४	अन व मी अना	७८
अन व मी अना	८५	अन व मी अना	७९
अन व मी अना	८६	अन व मी अना	८०
अन व मी अना	८७	अन व मी अना	८१
अन व मी अना	८८	अन व मी अना	८२
अन व मी अना	८९	अन व मी अना	८३
अन व मी अना	९०	अन व मी अना	८४
अन व मी अना	९१	अन व मी अना	८५
अन व मी अना	९२	अन व मी अना	८६
अन व मी अना	९३	अन व मी अना	८७
अन व मी अना	९४	अन व मी अना	८८
अन व मी अना	९५	अन व मी अना	८९
अन व मी अना	९६	अन व मी अना	९०
अन व मी अना	९७	अन व मी अना	९१
अन व मी अना	९८	अन व मी अना	९२
अन व मी अना	९९	अन व मी अना	९३
अन व मी अना	१००	अन व मी अना	९४

विदा	९० पूर्व-चन्द्र	
क्रांति	९१ मुम्हारे लिप	१००
होरा	९२ चिर मनाधि	१०१
वन पाटल	९३ मृत्यु	१०२
पागल पयिठ	९४ लदार	१०३
अनर्प आवेदन	९५ समुद्र-तट	१०४
सुग-मरीचिका	९६ आधाराधेय	१०५
सदेह	९७ कौटोस्पल	१०७
अनुरोध	९९ परावलम्ब और स्वावलम्ब	१०८
	काम बन्द करने का समय	११०

तुम्हारी माया	३९	ममय की महायता	६१
अभिसार	४०	मिचन वेडा	६२
अकस्मात्	४१	मुग्धन	६५
शङ्का	४२	स्वरा	६६
घोड़ाई और अगाधता	४३	अनंत संगीत	६७
बुरूपयोग	४४	अभिमान	६८
अपना, पराया	४५	सुध	७०
आनन्द की शोभा	४६	ग्रहरी	७१
दन्धित	४८	प्रतिकूल	७३
ह्लासनीय स्वार्थ	४९	आगून, स्वप्न, सुषुप्ति	७३
कर्मों के अर्थ	५०	अभीष्ट आदेश	७४
स्वयम्	५१	सकीर्ण पथ	७५
तुम्हारा पीछा	५२	स्वतः मिद्धि	७६
सिद्धावलोकन	५३	मास्का	७८
मधुर मान	५४	तुम स्वयं आरहे हो	७९
प्रमाद	५५	उद्देश की सकलता	८०
अधुरी वाचना	५६	प्रतिविम्ब	८२
तुम्हारी रवि	५७	रवि	८३
संताप की शीतलता	५८	स्वान	८४
अमाव में आदिर्भात	५९	दून-आगमन	८६
अनादि संगीत	६०	आकर्षण	८७
तुम तो मेरे पास हो	६१	अशान्ति में शान्ति	८८
जागृति	६२	स्वाध	८९

बिदा	३	
कांस	१०	दूर-चन्द्र
होरा	११	तुम्हारे लिए
वन पाटल	१२	चिर सनाधि
पागल पण्डित	१३	मृत्यु
कागध कावेदन	१४	वदार
कृष्ण-मोहिनी	१५	समुद्र-तट
संदेह	१७	आधाराधेय
कनुरोध	१८	छोडाहल
	१९	परावलम्ब और स्वावलम्ब
काम बन्द करने का समय	१११	
		१००
		१०१
		१०२
		१०३
		१०४
		१०५
		१०७
		१०८
		११०

साधना-कार

की

अन्य रचनाएँ

संलाप — सांमिह कथनोपकथन ।

(२)

भावुक — मनोहर कविताएँ, स्वर

लिपि सहित । ॥)

प्रयास — साधना के दृग का,

वात्सल्य रस-पूरुष तस-

काव्य । (२)

सुधांशु — मनोवृत्ति-सूक्तक रस-

कोटि की कहावियाँ ।

(३)

प्रकाशक

भारती-भंडार

रामपाट, बनारस सिटी

साधना

प्रार्थना

अपने पद-पद्म-पराग से मुझे अपने घट को नित्य मँजने दे
और इसके मधु-भकरन्द से इसे पूर्णतया भरने दे ; यही एक
मात्र प्रार्थना है ।

हे तपनरत्न नौरत्न नृमन्त्रों को शीतल करने के लिए अपने आपको वरम देना है। यह तन की साधना में तुझसे सीखता है।

हे मानस नृ निरन्तर मोर्ती के समान उज्ज्वल, निर्मल और रम्य तरङ्गें उठावा करता है। चित्तके सुख में मग्न होकर सुवर्णमगोज भूमा करने हैं और निरन्तर तुझे मकरन्ददान देने रहते हैं। नृ उसे सादर ग्रहण करके फिर उन्हीं के समूल ताल पुष्ट करने में प्रयुक्त करता है। जब समस्त सर पहिल और राजहंस विकसित हो उठते हैं तब उन्हें तेरे मित्रा कौन आश्रय दे सकता है ? यह मानस साधना में तुझसे सीखता है।

हे पादप फलों के बोझ से नृ झुक जाता है और तेरी हाँसे टूटने लगी हैं। पर नृ अपना नियम नहीं छोड़ता। क्योंकि बुभुक्षितों को तृप्त करके उनकी अग्नि स्थोलना तेरा प्रण है। बुद्धि की सफलता भी यही है। और इसे मैं तुझसे सीखता है।

चातक, नृ अपनी ज्वलन्त कामनाओं को मर आँर से एकत्र करके एक स्वानि को घूँट पर लगाता है और नृ अपनी धुन का इतना पक्का है कि माँस मर उसी का रस लगाये रहता है और उन्हीं एक घूँट में अमृत पान के समान झुक जाता है। तेरी उस पर इतनी अनुसंगमर्था प्रथम कामना है कि नृ उसमें मिल कर अपने अहम्भाव का अभाव नहीं कर देना। वरन केवल इसी

जिसे आत्मभाव ध्याने में लाया है कि निम्नर ऊपर की आत्मा
जैसे तब से आनन्द का सुख देता है। यह आत्मभावमय
भावना की साधना में सुख में आगता है।

अतः मेरी इन सब साधनाओं का उद्देश्य क्या है ? एक भा-
वना कि मैं आनन्द की गिड कर हूँ।

सेवा

तेरी सेवा ही में मुझे अकथ, अतुल और अनन्त आनन्द है ।

मैं कदापि स्वतन्त्र नहीं होना चाहता । न अपनी सेवा के बदले कुछ चाहता हूँ ।

स्वतन्त्रता की निरङ्कुशता और उच्छ्वस्तता के दुःखों को मैं जानता हूँ और उनसे बहुत डरता और दूर भागता हूँ ।

तेरी सेवा में मुझे जो गर्व तथा आनन्द प्राप्त होता है वही इतना है कि मैं उससे फटा पड़ता हूँ, फिर मुझे बदले की अपेक्षा कहीं ?

अपनी सेवा से मुझे न हटा, न मुझे उसमें भेदभाव करने दे ।

रहस्य

क्या तेरी मत्ता इसी में है कि तू अपने ही को सगुम्हनुग,
माशयान् और मिथ्या मान ले ?

क्या तेरी चेतनता यही है कि तू अपने ही को मृत और
जड़ समझ कर अपने ही से दूर भागे ?

क्या तेरे आनन्द का ऐसा ही रूप है कि तू अपने गाने से
अपने ही को धोखा दे, छले और दूर ले जाय तथा इसी में
अपनी सफलता समझे ?

हे सच्चिदानन्द, मुझे समझा दे कि इसमें क्या रहस्य है
और इसका क्या अर्थ है ?

भूल

मैं समझता था कि जिस प्रकार रंग विरंगे खिलौने देकर माता-पिता पुत्रों को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार तूने भी यह विचित्र सृष्टि हमको दी है।

फिर तू इससे मुझे अलग क्यों करता है? क्या खिलौने धीन कर लड़के विकल किये जाते हैं?

या मैं भूल रहा हूँ? इससे छुड़ा कर तू मुझे अपनी छाती से लगा कर चूमना चाहता है। वह सुख—जिसके लिए बड़े खिलौनों को स्वयं फेंक देते हैं।

अनुगम-विरम

१०३ । अथ मंग हृदय मुग्धारा मुख ।

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ जगत्पिता का कृपा से हमने प्रेम से पढ़ा

११. इसका मतलब यह है और उसे छि

॥ श्री गणेशाय नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

* * * * *

4. ¹ *Id.* 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 121, 122, 123, 124, 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 171, 172, 173, 174, 175, 176, 177, 178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 192, 193, 194, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 203, 204, 205, 206, 207, 208, 209, 210, 211, 212, 213, 214, 215, 216, 217, 218, 219, 220, 221, 222, 223, 224, 225, 226, 227, 228, 229, 230, 231, 232, 233, 234, 235, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 242, 243, 244, 245, 246, 247, 248, 249, 250, 251, 252, 253, 254, 255, 256, 257, 258, 259, 260, 261, 262, 263, 264, 265, 266, 267, 268, 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 276, 277, 278, 279, 280, 281, 282, 283, 284, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 295, 296, 297, 298, 299, 300, 301, 302, 303, 304, 305, 306, 307, 308, 309, 310, 311, 312, 313, 314, 315, 316, 317, 318, 319, 320, 321, 322, 323, 324, 325, 326, 327, 328, 329, 330, 331, 332, 333, 334, 335, 336, 337, 338, 339, 340, 341, 342, 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350, 351, 352, 353, 354, 355, 356, 357, 358, 359, 360, 361, 362, 363, 364, 365, 366, 367, 368, 369, 370, 371, 372, 373, 374, 375, 376, 377, 378, 379, 380, 381, 382, 383, 384, 385, 386, 387, 388, 389, 390, 391, 392, 393, 394, 395, 396, 397, 398, 399, 400, 401, 402, 403, 404, 405, 406, 407, 408, 409, 410, 411, 412, 413, 414, 415, 416, 417, 418, 419, 420, 421, 422, 423, 424, 425, 426, 427, 428, 429, 430, 431, 432, 433, 434, 435, 436, 437, 438, 439, 440, 441, 442, 443, 444, 445, 446, 447, 448, 449, 450, 451, 452, 453, 454, 455, 456, 457, 458, 459, 460, 461, 462, 463, 464, 465, 466, 467, 468, 469, 470, 471, 472, 473, 474, 475, 476, 477, 478, 479, 480, 481, 482, 483, 484, 485, 486, 487, 488, 489, 490, 491, 492, 493, 494, 495, 496, 497, 498, 499, 500, 501, 502, 503, 504, 505, 506, 507, 508, 509, 510, 511, 512, 513, 514, 515, 516, 517, 518, 519, 520, 521, 522, 523, 524, 525, 526, 527, 528, 529, 530, 531, 532, 533, 534, 535, 536, 537, 538, 539, 540, 541, 542, 543, 544, 545, 546, 547, 548, 549, 550, 551, 552, 553, 554, 555, 556, 557, 558, 559, 560, 561, 562, 563, 564, 565, 566, 567, 568, 569, 570, 571, 572, 573, 574, 575, 576, 577, 578, 579, 580, 581, 582, 583, 584, 585, 586, 587, 588, 589, 590, 591, 592, 593, 594, 595, 596, 597, 598, 599, 600, 601, 602, 603, 604, 605, 606, 607, 608, 609, 610, 611, 612, 613, 614, 615, 616, 617, 618, 619, 620, 621, 622, 623, 624, 625, 626, 627, 628, 629, 630, 631, 632, 633, 634, 635, 636, 637, 638, 639, 640, 641, 642, 643, 644, 645, 646, 647, 648, 649, 650, 651, 652, 653, 654, 655, 656, 657, 658, 659, 660, 661, 662, 663, 664, 665, 666, 667, 668, 669, 670, 671, 672, 673, 674, 675, 676, 677, 678, 679, 680, 681, 682, 683, 684, 685, 686, 687, 688, 689, 690, 691, 692, 693, 694, 695, 696, 697, 698, 699, 700, 701, 702, 703, 704, 705, 706, 707, 708, 709, 710, 711, 712, 713, 714, 715, 716, 717, 718, 719, 720, 721, 722, 723, 724, 725, 726, 727, 728, 729, 730, 731, 732, 733, 734, 735, 736, 737, 738, 739, 740, 741, 742, 743, 744, 745, 746, 747, 748, 749, 750, 751, 752, 753, 754, 755, 756, 757, 758, 759, 760, 761, 762, 763, 764, 765, 766, 767, 768, 769, 770, 771, 772, 773, 774, 775, 776, 777, 778, 779, 780, 781, 782, 783, 784, 785, 786, 787, 788, 789, 790, 791, 792, 793, 794, 795, 796, 797, 798, 799, 800, 801, 802, 803, 804, 805, 806, 807, 808, 809, 810, 811, 812, 813, 814, 815, 816, 817, 818, 819, 820, 821, 822, 823, 824, 825, 826, 827, 828, 829, 830, 831, 832, 833, 834, 835, 836, 837, 838, 839, 840, 841, 842, 843, 844, 845, 846, 847, 848, 849, 850, 851, 852, 853, 854, 855, 856, 857, 858, 859, 860, 861, 862, 863, 864, 865, 866, 867, 868, 869, 870, 871, 872, 873, 874, 875, 876, 877, 878, 879, 880, 881, 882, 883, 884, 885, 886, 887, 888, 889, 890, 891, 892, 893, 894, 895, 896, 897, 898, 899, 900, 901, 902, 903, 904, 905, 906, 907, 908, 909, 910, 911, 912, 913, 914, 91

मृगमयिणी क. मंग. अथवा मंगल

1. *Journal of the American Medical Association*, 1997; 277: 1039-1043.

• • • • • मूल नीति क्या है और सु

* * * भाग । यह विषय ।

‘...’

१०३५

[illegible]

... ..

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

$$\frac{d}{dt} \left(\frac{1}{2} \dot{\theta}^2 + \frac{1}{2} \dot{\phi}^2 + \frac{1}{2} \dot{\psi}^2 \right) = \frac{d}{dt} \left(\frac{1}{2} \dot{\theta}^2 + \frac{1}{2} \dot{\phi}^2 + \frac{1}{2} \dot{\psi}^2 \right) = 0$$

॥ ११४ ॥ गद् वाटिका मुय । १०० ॥ १५१ ॥ गद् वाटिका मुय । १०० ॥

हामा इतना कामकाज है कि हमका : २१३ १०/११ १९४१

लेकर तुम इसके 'शंकर' बनते हो उसमें ऐसी कुभावना करने
में यद् पर कौन पाप, अनर्थ और नीचता होगी !

क्या स्वयं वही जड़ माया के फन्दे में नहीं फँसा है जो उसे
सर्वत्र माया ही माया देख पड़ती है ?

मोहन

[illegible]

यहाँ की शक्ति से अब प्रकृति अपने-बने-बने का काम करे। किताबों का अध्ययन करने से ही सब सुखों का दुर्लभ स्रोत है। इस प्रकार का सुख ही सत्य सुख है।

जब मानवियमना बुद्धिमानों की शक्ति पर शक्य साधन का
गता है और मैं विमान समोच्च की ओर देखना देखना
अनन्त ज्ञान विधानों में अज्ञान हो जाता है तब हमने बुद्धि अज्ञान
धर्मों में मानविकता के पीछे में अज्ञान करने में ही निहित है ।

प्रायः प्रातः जब सूर्योदय होने लगता है तब ही हमारे मन में एक प्रकार का अविद्या भाव उत्पन्न होता है। यह भाव हमें भ्रमित करता है कि मैं इस दुनिया में हूँ और मैं इस दुनिया के लिये जी रहा हूँ।

आनन्द-गीत

मेरे गीत आनन्द-सौरभ से बने हुए हैं ।

तुम्हारे पाद-चन्द्र के स्पर्श से मेरा मन-अशोक लड़वा कर दूर उठता है और उसके योग से नत्र होकर आनन्दानन्द धन-राने लगता है । वह आनन्द, जिससे मैं स्वयं नत्र हो जाता हूँ ।

तुम्हारा नम-चन्द्र देख कर मेरा मानस रत्नाकर हो जाता है और अजरत आनन्द के गीत गाने लगता है । और तुम्हारी कृपा का क्या कहना । तुम उत्तर पीपुष बरस करके उसे अनृतनय बना देते हो ।

मित्र, भला जब तुम अपने करों से मेरे हृत्कमल को खोलते हो तब वह कैसे न खिल कर आनन्द-नरन्द दावे और सारे सर को उसने नम्र कर दे ।

शत्रुराज, तुम कुतुम्हों के शोष और सौरभ के सागर से सज कर मेरे मन-पिक से मिलते हो । फिर वह आनन्द से पागत होकर पञ्चन-गान की धुन बाँध के अपने प्राण की पयुस्तु-कटा को पक्ष दिपे दिना कैसे रह सकता है ?

मयूर वो मेघ को विलोक कर केवल इतना ही प्रसन्न होता है कि उसको अपने मूल्य और गीत से प्रकट कर देता है । पर इसका आनन्द इतना अपार है कि अपने गीत के मूल्य से इसका कुछ परिषय देने की चेष्टा करके वह अपने को धन्य धन्य सम-झता है ।

प्रकृति और कला

मैंने तुम्हें अपनी प्रकृति अर्पित कर दी है। तो भी मैं तुम्हारे पास अपने प्राकृतिक रूप में नहीं आता। मैं सज कर तुम्हारे पास आता हूँ। क्या लोकलज्जा से ? नहीं। कला के सहारे मैं तुम्हें और भी मोहित करना चाहता हूँ।

परिणाम उलटा होता है। तुम मेरी ओर तो ध्यान नहीं देते, उसी के देखने में लीन हो जाने हो। और उसी की आलोचना में समय बीत जाता है।

हे प्रियतम, अब मुझे अपना मिथ्या-विश्वास मालूम हो गया। अब मैं तुम्हारे पास निस्सन्न होकर आऊँगा। तुम मेरा प्रकृत रूप देखो और उसी की आलोचना करो।

प्रेम-परिचय

जब मैं तुम्हारे सामने नाचने लगता हूँ तब तुम मेरी ओर एकटक देखते हुए मुझ पर सुधा चरसा कर मुझे ऐसा मत्त क्यों कर देते हो कि मेरी गत विगड़ने लगती है और मेरे पैर टाँफ नहीं पड़ते। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है ?

तुम्हारा चेहरे कैसा विलक्षण है कि मैं तो तुम्हें मोहित करने को नाचता हूँ पर तुम उलटा मुझे ही मोहित करके अपना मनमाना नाच नचाते हो !

मैं समझा। मुझ पर तुम्हारा प्यार मेरे प्रेम से कहीं बड़ा हुआ है। इसी से तुम मेरा मन धार धार अपनी ओर खींच लेते हो।

पर, हे प्रियतम, इसकी क्या आवश्यकता ? मैंने तो तुम्हें आत्मसमर्पण कभी का कर दिया है। यस अयं तो—मुझे छाती में लगा लो।

कृपालु कर्णधार

हे मेरे नाविक, यह कैसी घात है कि जब मेरी नाव मँक-
घार में थी तब तो तुम्हें हटा कर मैंने टॉड ले लिये थे और
सगर्व तुम्हारे आसन पर आसीन होकर बड़ा भारी खिन्नया मन
बैठा था। पर जब वह घार से पार होकर गम्भीर जल में पहुँची
तब मैं हार कर उसे तुम्हारे भरोसे छोड़ता हूँ।

तब तो नाव घार के सहारे बह रही थी, खेने की आव-
श्यकता हीन थी। इसी से मेरी मूर्खता न खुली। पर अब ?
अब तो इस गम्भीर जल से चतुर नाविक के बिना और कौन
नाव निकाल सकता है ?

परन्तु मैं तुम्हारी बड़ाई किस्स मुख से करूँ ! तुम मेरी
मूर्खता और अभिमान तथा अपने अपमान की ओर नहीं देखने
और सप्रेम ढाँड लेकर नाव किनारे की ओर चलाते हो।

भावुरता

मुझे तुम्हारे पास पहुँचने की जल्दी भी पड़ी है और मैं तुम्हारे मन्दिर के मार्ग पर कब से चल भी रहा हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे पास अब तक पहुँचा नहीं।

इनका कारण है। औत्सुक्य के नारे मैं बार बार पीछे फिर कर देखने लगता हूँ कि कितनी राह कटी और इसमें समय नष्ट होता जा रहा है।

परन्तु इसमें एक इशकार हुआ। ज्यों ज्यों समय बीतता है त्यों त्यों मेरी विरहव्याधा भी बढ़ती जा रही है। अब मुझमें एक एह भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। लो, मैं अपनी आँखें बन्द करके तुम्हारा ओर बढ़ता हूँ।

कच्चे घट में अमृत

तुम अमृत को घार घार कच्चे घटों में भरते हो और मैं उन्हें गलने देखता हूँ।

मुझे अचरज होता है कि अमृत के पात्र बन कर भी वे क्यों नष्ट होते हैं और मैं पुकार उठता हूँ कि तुम्हारा अमृत मूढ़ा है।

तुम बुद्ध झेलते नहीं और मैं समझता हूँ कि तुम निरुत्तर हो गये।

पानी दरसने से मैं मिट्टी को गलने देखता हूँ। पर वही गली मिट्टी जब हरी हो जाती है तब मेरी आँखें खुलती हैं। मैं जो उन गले हुए घटों की ओर देखता हूँ तब मुझे माझूम होता है कि उनके प्रत्येक कण को वेध कर मुधा ने उसे अमरता प्रदान की है।

केवल तुम्हीं

जब तुम मेरे पास आये तब मैं तुम्हारे लिए विलकुल तैयार न था, पर तुमने उस पर ध्यान न दिया और मेरे पास बैठ गये ।

मैं अपनी कंमटों में फँसा था सो मैंने तुम्हारी ओर देखा भी नहीं । किन्तु तुम मुझे जिस उपकरण की आवश्यकता होगी, देते जाते ।

मैं अपनी धुन में मग्न था ।

सम्झा के समय शारीरिक आन्ति के कारण—कुछ मान-मिक शान्ति मे नहीं—मैं कामो मे विग्न हुआ ।

कितने ही अन्तराह मित्रो को मैंने बिठा रक्का था । काम मे विमुख होने पर उनमे वार्तालाप करने को कहा था । सौपा था कि जी बहलेगा । पर देगा कि वे सब के सब खत दिये । उनमे इनना धैर्य कहाँ । ठहरे एक तुम्हीं । धन्य ।

मैं गद्गद होकर तुम्हारे परणों मे लोटने लगता हूँ और अपनी धिन्ताओं को चिरकाव के लिए भूत जाता हूँ ।

सफल-काम

तुम्हारे कर-कान-पल्लव अर्हतिशि मेरे ऊपर दान-वर्षा कर रहे हैं। अब भी तुम्हें काननाएँ कहीं से रह सकती हैं।

तुम्हारे पद-अशोक की मेरे सिर पर नित्य छाया है। इससे तुम्हें शोक नहीं रह गया।

मैंने अनन्त काल से इस नानस को पक़्तिल बनाया था कि तुम्हारे पद-पङ्कज इसमें विकसित हों। आज वह अर्थ सिद्ध हो गया और उनके राग से यह रञ्जित हो रहा है।

नयनों से बारि इस लिए बहाया था कि उनमें तुम्हारा वदन-वारिजात प्रसृष्टित हो। आज वह लालसा पूर्ण हुई और अब मैं निरन्तर उसे आनन्दामुओं से सौंच रहा हूँ।

वास्तविक मूल्य

मेरी कानुनों को वे मुझमें रखें पर ले जाएं अपने
कोई भी निम्न मूल्य देकर लौटेंगे।

मैंने मेरे मूल्य को माँगा करते। पर निम्न मूल्य में,
का नहीं मूल्य। कानून का हान्य जानने का, माँगाई मुझमें
रखें। मैं तो उनको दानों को सब ही मूल्यमात्र।

एक दिन वे न करते। मूल्य हो गई। मुझमें अपनी कानून
माँगाईलों को कानून का हान्य देकर विमान हुआ। मैं
एक का हान्य पर बैठे था। पर विमान न हुआ था। मूल्य
निम्न कानुनों को प्रतिदिन माँगाई रखें पर देकर का
एक दिन विमान न होने पर कानून होकर कानून को
रखें हैं।

मैंने भी उन्हें लेकर पर लौटेंगे मुझे नहीं पड़ गया।

कानून को उन्हें कानून के मूल्य, निम्न, पर देकर का
कानून लिए, पर विमान ने भी न लिए। तब मैं उन्हें भी
विमान लिए और कानून को भी, मुझे ही उन्हें नहीं,
कानून के लिए।

असम्भव

मैंने सुना है जो काव्य अपने ऊपर लिया है एक और जो
मेरे पुत्र बनने में कर्तव्य है और जो मुझे पुत्र बनने की
जगह भी परी है, दूसरी और उसका बनना मुझे असम्भव
जन पदना है ।

जितना बड़ा यह काम है, जितना ही छोटा मैं हूँ, और पुत्र के
माँ में इतना अद्वयता है ।

अब मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ?

सुनो बच्चे—“असम्भव का नाम न लो, इस सम्भव
विषय में असम्भव बातें ।” मैं निश्चय हो जाता हूँ और नन-
दिल हीन प्राणपण में काम में लग जाता हूँ ।

निरुद्धदेश निर्माण की सफलता

मैं एक सूखी नदी के किनारे निरुद्धेश पैदा था। जी पर-
राने लगा सो मैंने इधर उधर फैले पथर के ढाँके उठा उठा
कर उनमें इन पार से उम पार तक रम्बना प्रारम्भ किया।
कुछ समय तक यही काम चला। अन्त को मैं, थक कर
बिगल हुआ।

आज, वर्तमान में, वह नदी बेग में बह रही है। बगारे
पर के वृक्ष प्रथम क्षण में दिगने, दूसरे में मुकने, और तीसरे में
धार में बहने दिगारें पड़ने हैं। पानी प्रतिपल बढ़ता जा
रहा है, पर मुझे उम पार जाना आवश्यक है। और आज
मुझे नदी निरुद्धेश जुनी हुई पथर की पंक्ति में का काम
देनी है।

असम्भव

मैंने तुमसे जो वाक्य आपने ऊपर लिया है एक और जो
मेरे पूरा करना मेरा कर्तव्य है और उसे मुझे पूरा करने पर
जारी भी पड़ी है, दूसरी और उसका करना मुझे असम्भव
जान पड़ता है।

जितना बड़ा था काम है उतना ही छोटा मैं हूँ, स्वीकृत्य के
आगे मेरा हृदय झटल रहा है।

अब तुमकी बताओ, मैं क्या करूँ ?

तुम कहते हो—“असम्भव का नाम न लो, इस सम्भव
क्षिप में असम्भव बानी।” मैं निश्चय हो जाता हूँ और नत-
ईश हीवर आलपण में काम में लग जाता हूँ।

महत्ता

इस प्रकार जिस दिन पर एनी के निजम स्वयं ही
जो नमिष भी भयान न देखे उसे कथन करो दो दो दो दो
हम पर भयान होता है जो कथन राम से मिले, भयान
भी नमिष कर देता है, एवं हम-भयान का सुदृष्ट भयान कर
महा भयान के भयान पर दिला कर, हम भयान-भयान-भयान
भयान, भयान भयान-भयान भयान के भयान भयान का भयान भयान
देता है।

इसका ही मानी, या जो इस संघ पर होता है कि जो
अपनी हीनता निम्नता काया के नीचे अन्तर्गत अन्तर्गत हो जाती
है, जो कि इसी का अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ है ।

[illegible]

जगत् का पागल

तुम कुछ जानते हो ? साग जगत् मुझे पागल कहता है ! और कहे कैसे न ? यदि मुझे उसका पूरा भरोसा होता तो मैं उसी मार्ग पर चलता । पर उसमें तो मुझे सहारा देने वाला कोई है ही नहीं ।

मुझे विश्वसनीय आश्रयदाता तो तुम्हीं मिले, इमनिश मैं तुम्हारे ही मार्ग पर चलता हूँ । जानते हो, सब स्वार्थी होते हैं ।

पर तुम्हारे मार्ग में ऐसी क्या बात है कि उस पर चलने में मैं पागल कहा जाता हूँ । मेरे स्वामी, तुमने तो अपनी सभी सीति जगत् में उतरी रखी है । हे शिखात्मा, ऐसा क्यों ? हे दयानिधे, मुझे बता दो कि संसार को इस मुग में बहिष्कृत करने की निदुर्गाह तुमने क्यों की है ।

तुम्हारी माया

मैं तो अपना सख्त तुम्हें दिखा चुका फिर तुम अपने को मुक्त क्यों छिपाते हो। क्या तुम्हें इसी में सुख मिलता है कि मैं तुम्हारे लिए उद्योग करूँ और तुम बैठे बैठे देखो ?

किन्तु नहीं, मैं भूल कर रहा हूँ। तुम्हारा और मेरा सम्मिलन तो अनादि है। यह तो तुम्हारे मोहन मन्त्र का प्रभाव है कि मैं तुम्हें दूर समझता हूँ और मिलने का उपाय करता हूँ।

मैं विमल प्रभा के पास कितने काल लों रहा हूँ। परन्तु तुमने मेरी आँखों पर ऐसी पट्टी बाँध दी है कि अब यदि उसकी एक रश्मि भी उसमें पड़ जाती है तो मेरी आँखों में चकाचौंध होने लगती है। और उसे खोलने में तो मैं इतना डरता हूँ जिसका ठिकाना नहीं। तुम्हारे इन्द्रजाल ने मुझमें यह संशय उपजा दिया है कि इसके खोलते ही आभा के मारे मेरी आँखें फूट जायेंगी।

तुमने मुझ पर न जाने कौनसा आवेश कर दिया है कि जिस रंगपट्टी के पीछे के दृश्यों पर मैं जान देता हूँ उसी को हटाते डरता हूँ।

भला, इस सय से तुम्हें कौन आनन्द मिलता है ?

अभिसार

मेरा अभिसार भी कैसा अनायास है ।

भादों को अंगरी गन है । कान कान बादना ने आकाश को आग्धादित कर लिया है । माना अन्धकार में मार्ग न पाने में यही अटक गया है । बिजना नक का कहीं पना नहीं । क्या वह इन आले बादलों में लकी पड़ गई है या अन्धकार के मारे पड़बना चफना का भी घन फटन में निश्चिन्ने का साहस नहा ?

ऐसे समय में प्राणनाथ में भिजने निकला हूँ । न तो मेरे पास बीपक है न मुझे मार्ग साहस है न उनका निवासस्थान हो । दूखी पहुँचण है, वह मेरे पैर पकड़ कर और प्रवत पान कन पल पर, मेरे कानों में, मुझे ऐसा दुष्साहस करने को मना करता है ।

पर मैं चल पड़ा हूँ ।

प्राणेश कहीं बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । उनकी बिजना की प्रतिलिपि मेरे हृदय में हो गयी है, जो मुझे भिर नहीं रहने देती और सागर की ओर भागीरथी की धाति में उगी आँख आँख हुआ, बना जा रहा हूँ ।

मुझे मूक नहीं पड़ना पर मेरे पैर टोच टोच पड़ने दें ।

अकस्मात्

यह पय सुन्दर दर्यों से पिरा हुआ है। सुहावने लिंगध नयन वृज अपने करों की इत पर छाया किये हुए हैं। पर मेरा ध्यान इन सब की ओर नहीं जाता। मैं अपनी धुन में आगे बढ़ता जाता हूँ।

कब मैं चला, कब प्रातःकाल का स्वागत पक्षियों के कोमल और मधुर कण्ठ ने किया, कब दोपहर की सूचना पवन की सनसनाहट ने दी, कब लिंगध पक्षियों की अपने करों से स्पर्श करके उन्हें अनुराग से किसलयों के सदृश बनाता हुआ सूर्य विदा हुआ, मुझे कुछ नाखून नहीं। कब उसके विदा होते ही नमस्तर में लाखों नलिनो खिल उठीं, कब चन्द्रनुखा रजनी आई, इतका भी ज्ञान नहीं।

अकस्मात् मुझे रोनाश्च होता है। मैं पुलकित हो जाता हूँ। प्रवेद-कर के आविर्भाव से मेरा शरीर चन्द्रचुम्बित चन्द्र-कान्त की भाँति हो जाता है। तब मानों मेरी आँखें खुलती हैं और मैं अपने को तुम्हारी बाँहों में, तुमसे चुम्बित होता हुआ, पाता हूँ।

अभिसार

मेरा अभिसार भी कैसा अनोखा है ।

भादों को अंधेरी रात है । काले काले बादलों ने आकाश को आन्धरादित कर लिया है, वे मानो अन्धकार में मार्ग न पाने में यही अटक गये हैं । बिजली नक का कहीं पता नहीं । क्या वह इन आले बादलों में ठड़ी पड़ गई है या अन्धकार के भारे चञ्चला चपला को भी घन पटल में निकलने का साहस नहीं ?

ऐसे समय में प्राणनाथ से मिलने निकला हूँ । न तो मेरे पास डोंपर है न मुझे माग मादम है न उनका निवासस्थान हा । टूटी पट्टावण है वह मेरा पैर पकड़ कर और प्रयत्न पवन पन पन पर मेरे कानों में मुझे ऐसा टुम्माहम करने को मना करना है ।

पर मैं बल पड़ा है ।

प्राणेश यही बैठे हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । उनकी चिन्तना की प्रति प्रति मेरा हृदय में हो रही है जो मुझे स्थिर नहीं रहने देती और सागर की और भागीरथी की भालि में उमो और आकृष्ट हुआ बना जा रहा है ।

मुझे मुझ नहीं पड़ना पर मेरा पैर टोक टोक पड़ने है ।

अकस्मात्

या पथ सुन्दर हरियों से भिगा हुआ है। सुहावने मिनाय नयन दृष्ट अपने बनें की इस पर लाया किन्ति हुए हैं। पर मेरा ध्यान इन सब की ओर नहीं जाता। मैं अपनी धुन में जगने बदता जाता हूँ।

बस मैं खला, बस प्रातःकाल का स्वागत पलियों के बोंगल ओर मधुर वगड में बिचा, बस दोपहर की सूपना पदन की मनसनाहट ने दी, पथ मिनाय पलियों की अपने करो से स्पर्श करके उन्हें अनुगत से बिसलियों के सदरा बनाता हुआ मूर्ख बिगा हुआ, मुझे कुछ मारम नहीं। बस उत्तरे बिदा होते ही नभगर में लावने नलिनी मिल जाती, बस चन्द्रमुखी रजनी आई, इतना भी जान नहीं।

अबमान मुझे रोमाञ्च होता है। मैं पुलकित हो जाता हूँ। प्रवेद-बल के अतिर्भाव से मेरा शरीर चन्द्रमुखित चन्द्र-बाण की भोजि हो जाता है। तब माने मेरी ओर से कुलती है और मैं अपने को तुम्हारी दौरी से, मुझे सुनिश्चित होता हुआ, जान हूँ।

ओढ़ाई और अगाधता

जब मैं देखता हूँ कि मैं कातर होकर तुमसे प्रार्थना करते करते सन्त हो जाता हूँ, और यद्यपि वे याचनाएँ तुच्छातितुच्छ हैं, पर तुम उन पर ध्यान तक नहीं देते—उन्हें देना कहाँ का—तब मैं तुम पर कठोरता का कलङ्क लगाता हूँ और तुम्हारी दृष्टि पर अविश्वास करता हूँ।

परन्तु जब मैं उस नाली की ओर ध्यान देता हूँ जो तुम क्षुब्ध की एक कली को छोड़ कर अन्य कलियों के लिए तैयार फेंकता है कि वह क्षुब्ध परम विशाल और सुन्दरतम फूल अलङ्कृत होकर फूला न सनाय, तब मुझे अपने ओढ़ेपन से तुम्हारी अगाधता की याद लग जाती है।

शङ्का

मेरा हृदय बारबार शङ्कित क्यों होता है ? क्या इम डर से कि तुम मेरे बहुत बज्र में मिले प्यारे हो कहीं विलग न जाओ ? नहीं आत्मविश्वास की कमी में मुझे अपने प्रेम पर शङ्का होने लगती है ।

सदैव समोप रहने हुए भी मैं तुम्हें दूर क्यों समझता हूँ ? क्या तुमने मुझे ऐसा विश्वास करा दिया है ? नहीं अपनी भूल में मैं ऐसा समझ बैठा हूँ । क्या निरन्तर चला पृथ्वी को हम अचला नहीं कह रहे हैं ?

तुम्हें हम अगोचर क्यों कहने हैं ? क्या याम्भव में ऐसी बात है ? नहीं, हमने अपनी इन्द्रियों को नेम हीन और तुच्छ कामों में फँसा रक्खा है कि उनमें यथार्थ काम लेते ही नहीं । जो नदी पाताल फोड़ कर निकलती है वह भी क्या कभी मिट्टी से नहीं बँध दी जाती ?

ओछाई और अगाधता

जब मैं देखता हूँ कि मैं कितने होकर तुमने प्रार्थना करने करने भूल हो जाता हूँ, और यद्यपि वे याचनाएँ तुम्हारी तुम्हारी हैं, पर तुम उन पर ध्यान कर नहीं देते—उन्हीं देना यहाँ पा— तब मैं तुम पर पठोरता का कलह लगाना हूँ और तुम्हारी दया पर अगिरास करता हूँ।

परन्तु जब मैं उन भावों की ओर ध्यान देता हूँ जो पुनः-पुनः की एक बली की छोड़ कर अन्य बलियों इन लिए छोड़ देना हैं कि वह हुए पन्न विराम और सुन्दरतम दृष्टि से आँखों होकर दृष्टि न मनाय, तब तुम्हें अपने आँखों और तुम्हारी अगाधता की धार लग जाती हैं।

शपना, पराया

कहेतेला मज्जा को देखते ही मैं बचने का कर्म-सूत्र जाना हूँ ।
या सुनाय, सेंचला कर्म का मर्म तो कहेतेला है, फिर मैं ने
जान दतो नहीं करता । मज्जा तो जान को देखते बोला करता हूँ ।
कहा लगे सलमज्जा सुने का मेरा हुआ चेला है ।

जान को जान भी तो नहीं । यह सारा सुनकर के कह
लगाय, बोला का कर्म का मर्म तो देखता हूँ तो जानना सुने
जान को मज्जा करने के मेरा हूँ बचने ही जाना है ।

अरे, यह कैसा ज्ञान है जो हम को ऐसे भ्रममग्न कर
सुने का जान बना है ।

सुने के अविद्या देखना क्या मेरी यह व्याकरण-सूत्र सुने
जान को लगे बने बने ।

ਸਾਹਿਬੁ ਤੇਰੇ ਨਾਮੁ ਤੇਰੇ ਗੁਣੁ ਤੇਰੇ ਭਾਉ ਤੇਰੇ ਸੇਵਾ
ਸਾਹਿਬੁ ਤੇਰੇ ਨਾਮੁ ਤੇਰੇ ਗੁਣੁ ਤੇਰੇ ਭਾਉ ਤੇਰੇ ਸੇਵਾ
ਸਾਹਿਬੁ ਤੇਰੇ ਨਾਮੁ ਤੇਰੇ ਗੁਣੁ ਤੇਰੇ ਭਾਉ ਤੇਰੇ ਸੇਵਾ

श्लाघनीय स्वार्थ

मैं कैसे कहूँ कि तुन से प्रेम करता हूँ।

अनेक लुब्ध की प्राप्ति के लिए अपने को ही बाजना से दबाने के लिए मैंने आत्मसमर्पण कर डाला है।

कोपल अपने दशों का पालन-पोषण कराने के लिए उन्हें दूसरे नाई ने रख आती है; कुछ अन्य पक्षियों को पुत्रवती बनाने के लिए नहीं।

तब तो मैं स्वार्थी और आत्मनेर्मी मात्र ठहरा। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कहाँ रहा, फलन्तु जब तुन मेरे हृदय से पृथक् बैठने हो कि क्या हम तुन दो हैं, तब मैं निरुत्तर हो जाता हूँ।

कर्मों के अर्थ

तुमने अपनी मुरली की मधुर तान से मुझे मोह लिया और जो जो जी में आया मुझमें कराया। मैं ऐसा मोहित हो रहा था कि जो कुछ करना पड़ा उसका कुछ भी अर्थ न समझ सका।

संसार मेरे उन कर्मों का मनमाना अर्थ करता है। किसी को उनमें सौन्दर्य और सूक्ष्मता दिखाई देती है और कोई उन्हें घीमत्स और भरेपन का नमूना समझता है। परन्तु जब उनका अर्थ मैं ही नहीं समझ सकता तब दूसरे क्या समझेंगे? तुम उनके नियन्ता हो, तुम्हीं उनके अर्थ जानो।

स्वामी, मुझे उनका अर्थ और हेतु समझने की जरूरत नहीं। मुझे तो उस तान की चसक पड़ी है, वही सुनाने रहो और जो जो जी में आवे वही काम लो।

तुम्हारा पीछा

जिस प्रकार प्राची के कुङ्कुमाभ अनुराग का पीछा पार्वण चन्द्र, जिस प्रकार सुगद घटना का पीछा स्मृति, जिस प्रकार मेघध्वान का पीछा मार की कुरु, जिस प्रकार प्रथम वर्षा का पीछा पृथ्वी का सुगमन इन्द्रास और जिस प्रकार पर्वत-स्थली के मिहनाद का पीछा प्रनिध्वनि करमा है उसी प्रकार स्वर्थ मैंने तुम्हारा पीछा किया। क्योंकि मेरे देखते ही देखते तुम अदृश्य हो गये।

अम्बु, मैं हतोत्साह होकर बैठ गया। मेरी आँखें बन्द थीं। मैं तुम्हारे ध्यान में मग्न था। अकस्मान् पपीटा 'पी कहाँ, पी कहाँ' बोल उठा। जानें वह मेरा समदुर्खा था या मुझे गिरा रहा था। चाहे जो रहा हो, मेरा ध्यान उचट गया। मैंने गिरा होकर ज़िघर में उसका शब्द आया था उधर देखा। पर आश्चर्य ! देखता क्या हूँ कि तुम मेरी बगल में बैठे हो।

प्रभाव

तुम्हें तुम्हारे के लिए मैं सादर मज्जा कर पर मैं दादर निरुद्ध। राजस्थान पर भौड़ थी इन्तरे तुम्हें करना पड़ा। लोग मेरी ओर देखने और मजावट की प्रशंसा करने लगे। भला, प्रशंसा निम्न परमेश्वरों पर देनी ? मैं भी अपना प्रदुत उद्देश्य कर के उन्हें अपनी मजावट दिखाने लगा। आनन्द में मेरा हृदय नाच रहा था।

यहाँ तक कि अभिमान ने तुम्हें जन्मा बना दिया। तुम भी काकर उसी भौड़ में गड़े हो गये और तुम्हें देखने लगे, पर मैं तुम्हें न देखा।

मज्जा की भौड़ छूट गई और तुम्हारे दान के पौन्ध से गे मेरे लौटने लगे, तब मेरी आँखें खुलीं।

परन्तु अब हो क्या सकता था। हाय ! इस दिखाने में मैं तुम्हें न देख सका।

तुम तो मेरे पास हो

मैं कुटी बन्द करके आसन पर सगर्व बैठा था। उस कुटी को मैं विरव समझता था और अपने को उसका महाराज। अपने मद में मैं चूर था।

न जाने कैसे तुम भीतर आगये। मन्त्र-मुग्ध की भाँति आसन का एक कोना मैंने तुम्हारे लिए छोड़ दिया। तुम बैठ गये। मैं धीरे धीरे खसकने लगा। उस पर तुम्हारा अधिकार बढ़ने लगा। मैं भूमि पर आगया। तुम आसन पर पूर्णतः आसीन हो गये।

मैं निर्निमेष नयनों से, अघाक् होकर, तुम्हारी सुन्दरता निरखने लगा। मुझे उसमें प्रतिक्षण नवीनता मिलने लगी। श्वर मेरे हाथ तुम्हारे पाँव पलोटने लगे।

अकस्मान् प्रचण्ड पवन चलता है। कुटी हिलने लगती है। घनघोर पटा घिर कर दरखने लगती है। विद्युत्पात होने लगते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होता है। पर मैं अशान्त, विचलित या भीत नहीं होता हूँ। क्योंकि तुम तो मेरे पास हो।

चुम्बन

दिन भर मैं उनके लिए अपने को सजाने और गर्वपूर्वक दर्शन में देखने में लगा रहा ।

सन्ध्या हुई और सूर्य के वियोग से प्रकृति निस्तब्ध हो गई ।
मेरे हृदय दड़ल गये । मैं भी थक कर सो गया ।

वे कृतार्थक आये पर मनता के कारण मुझे जगाया नहीं ।
बस मेरा चुम्बन किया और चल दिये ।

उस कोनल चुम्बन से मेरे कठोर निद्रा भंग हुई । मैं आँखें
मल कर चक्षुस्त्रा देखने लगा । उनके चरणों की चौप सुनाई
पड़ती थी । मैंने उनके पीछे दौड़ना चाहा । पर चुम्बन ही के
आनन्द में मैं इतना विह्वल और कृतकृत्य हो रहा था कि मेरे
पैर न उठे ।

अनन्त संगीत

मैं अपने गीत सुनने की चाहता करता हुआ, संगीत भर में हुआ। पर रिती ने सुनने की अनिवार्य प्रवृत्ति नहीं। मेरा एक मात्र उद्देश्य था प्रसंसित होना।

अन्त को मैं निराश होकर घर लौट रहा था कि गजपथ ने एक नवीन मन्त्रोपदेश आ गया। मुलाहि सन्नाह आ रहे हैं। मैं बैसा ही गड़ा रह गया। देगता क्या है कि ये पौधपियादे मेरी ओर आ रहे हैं। पान आ जानें पर तत्र होकर मैंने आशा पूरी। वे हँस कर बोले—“सगे, मैं तुम्हारे पीछे तारे संगीत में हुआ हूँ, पर तुम्हारा तो ध्यान ही मेरी ओर न था। हमने अब तक तुम्हें अपनी यह याचना न कर सारा कि तुम्हें अपना गान सुनाओ।” याचक से याचना ! जिसके लिए मेरे संगीत ने तुम्हें विदुर किया उनकी याचना स्वयं सन्नाह करे। अहोभाग्य।

पुनरुत्थित होकर मैंने गान आरम्भ किया। मेन के नारे मेरा करुण भर रहा था। हमने मैं प्रति पद पर रुकता था। तुम्हें सैनातने के लिए सन्नाह ने मेरा साथ दिया। उनके नव-नारदनिर्गोचरनिन्दक निनाद ने मेरा स्वर भित कर सनत्त्व प्रभात में गूँज उठा। मेरे अरुह निन्दे उन्नी की प्रतिध्वनि करने लगे।

तब सन्नाह ने धीरे से कहा—“यह प्रतिध्वनि तो अनन्त काज न होगी गेहों आओ, हम तुम चने

किन्तु—मुझे काटो तो खून नहीं । मैं निष्प्राण पापाण-
प्रतिमा की भौंति वहीं निश्चल रह गया । अरे, यह तो वही उस
बेरा में वहाँ गये थे, अब यहाँ घँठे हैं !

पर वे निराकुल थे । सरल, सम्मित भाव से उन्होंने कहा—
अच्छे रहे ! एक तुच्छ परिहास भी न समझ सके !

प्रहरी

करी रात में जाता है। नींद का कुछ भार मेरी हलकी पल्ले नहीं सँभल सकती। रात भर पहरा देते देते मेरे कान खिंचे हो रहे हैं और जन्मकार में हडि की समस्त शक्ति एकत्र कर के दोनों से मेरी कानों तक गई हैं।

इस पल निधे के रहस्य का भार मेरे ऊपर का और मेरे मरणाश्रयक दूर करने का मुझे हर्ष और अभिमान है।

जब ममल संसार लहलु है। न कहीं दर्द है, न चोर-बाई का डर। तनिक तनिक से भी खड्की को, समस्त विरा, तुमने के निर मेरे कान दूर रेंगा लगे रहे हैं। इस तिर बें मुत्ता रहे हैं और मेरे संसार का कोलाहल भी उन्हें बाँका नहीं सकता।

जब मैं तुम से सोऊँगा।

प्रतिफल

आगे पड़ी गैरे मोना बाटा था। पर, अब मैं उठ कर
बेलना हूँ कि वह तो गल्ला हो गई। सब समय मोने में नय
हुआ। मोने के कहने तैने मुझे जमने अनुगत था जमी पचा
इस समय प्रहृति को मोने में अनुगत है और बुद्ध काय में वह
ओ मे। समान निमिगलद्वय हुआ चाहती है।

सम्पुटित होने वाले लोगों के साथ साथ भिन्न भाव
भी सम्पुटित हो रहा है।

मेरे सहयोगियों की चिन्ता ही वस्तु मेरे पास है।
बिना बुद्ध के उन्हें मेरी नहीं गये। अब सारी बातें उनकी
बाद में शान्त शान्त तैने बनेगा उन वस्तुओं को मुझे उन तत्त्व
बुद्धता बनेगा।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

जब मैं जागता रहता हूँ तब मेरा मन सोता रहता है और प्रियतन के स्वप्न देखा करता हूँ।

जब मैं निद्रित होता हूँ तब मेरा मन जाग जाता है और उनके साथ विहार करने लगता हूँ तथा मैं उसके सुन्दर स्वप्न का आनन्दोपभोग करता हूँ।

परन्तु जब सुषुप्तावस्था आती है तब तो मैं और मेरा अन्तःकरण दोनों ही तद्रूप हो जाते हैं। क्योंकि उस समय प्राणों के गाढ़ालिङ्गन का सुख मुझे मेरे सर्वस्व सहित मूर्च्छित कर देता है।

मेरी एष्टान्त कामना है कि मैं नित्य इसी दशा में रहूँ।

रुचि

देवता के उस मन्दिर में जहाँ पूर्ण राजस विभव है, यदि तुमने कोई गाने के लिए कहता है तो मैं स्वीकार नहीं करता। लाग लाय आग्रह करने पर भी मैं अपने हठ से नहीं हटता।

पर उस देव-मन्दिर में जहाँ बहुत दिनों से कोई आता जाता भी नहीं, अर्चा की पौन पर्या, जो जीर्ण हो कर भग्न हो रहा है, प्रकृति दया पूर्वक कोई से जिसको नरन्मत्त किया करती है, जिस पर छाया करने वाले घट-शृङ्ख की भी कमर मुक गई है और जिसके सामने का सरोवर जाने कब का सूखा पड़ा है केवल पानी ने नहीं और दीमकों की खाई उसकी लाठ उसके अन्धिय-पन्धर सरसा अथ लों नहीं है, उस देवालय में बिना किसी के फटे, स्वयं अपनी इच्छा और प्रवृत्ति से, अभु-अर्घ्य-प्रदानपूर्वक अपनी इष्ट-वस्तुओं की उत्तम से उत्तम और करण से करण लान लाना घर में प्रचलित होता है।

दूत-आगमन

मुझारे दून की धनीना में कितनी देर से कर रहा था। अपना सेंदेसा भेजने को मेरे हृदय में मरोर उठ रही थी। और, अपने सेंदेसे में यह बार बार बना कर बिगाड़ रहा था। जो भावना उठती थी उसमें नां न भरना था। यही होता था कि इसमें भी बड़ा हुआ सेंदेसा हो। इसी तर्क-बिर्क-सरी कल्पना के आनन्द में मैं निमग्न हो रहा था।

मुझारा दून आ पहुँचा। पर यह क्या, मैं उसे देखते ही अपनी सारी कल्पना और सब सेंदेसा भूल भाव कर यही पूछता हूँ—कहाँ प्रियतम न हुआ क्या ?

विदा

मित्रों, जब मैं तुम लोगों से विदा होने लगूँ तब मुझे पार
प्रणाम से विदा करना। मुझे सचे जी मे आशीर्वाद देना कि
मैं अपनी मायना में सिद्ध होऊँ।

यदि तुम मुझे मुने जी मे आज्ञा न दोगे तो मेरे पैर बंधे
मे पड़ेंगे, मेरा जी तुम में अटक रहेगा और मैं एकदिल से
अपने अभीष्ट में प्रयत्न न हो सकूँगा। फिर उसकी मिद्धि की
कोन आशा।

तब, यदि तुम मुझे सचे जी मे आज्ञा दोगे तो उनके
सन्प्रभाव से मेरा हृदय और भी दृढ़ हो जायगा और मुझे
निष्कर्षण सफलता होगी।

मित्रों, क्या तुम सब नहीं चाहते कि मुझारे जीवन सदा
की सफल पूरी हो जिससे मेरे मित्र और निरन्तर मुझारी सेवा
और सद्गति का मोभाव मिले ?

一

[illegible]

(Musical notation for the second system)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भी एक सुख है। जब तुम उसे ही नहीं पा सकते तब वहाँ का निरन्तर सुख तो तुम्हें एक अपरिवर्तनशील बोझ, नहीं यातना हो जायगी। अरे, बिना नव्यता के सुख कहीं? तुम्हारी यह कल्पना और सद्बुद्धि निनान्त मिथ्या और निस्तार है, और इसे छोड़ने ही मैं तुम्हें इतना सुख मिलेगा कि तुम छक जाओगे।'

परन्तु उसने मेरी एक न सुनी और अपनी राम-मोटरिया उठा कर चलता बना।

अव्यर्थ आवेदन

आवेदन किमान १ समझता है कि अपने सेवक से
तुन वा आदेश किया है उस पर उसने ध्यान भी न दिया
है। सोचता है कि तुन वा आदेश बहुत बड़ा है और
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। उस महान के मन में ऐसी
चिन्ता है कि तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश
तुन वा आदेश है।

कहा कि तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश
तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश
तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश
तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश

तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।

तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।

कहा कि तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।
तुन वा आदेश तुन वा आदेश है। तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।

तुन वा आदेश तुन वा आदेश है।

मृग-नरीचिका

जरे, तू धैर्य क्यों नहीं धरता. चिन्तित होने को क्या बात है ?

जित दृष्टा के कारण तू भटकता फिरता है वह यद्यपि दुन्दे नहीं है परन्तु उसके लिए भटकने में तुझे क्या सुख नहीं मिलता ?

जित समय परेरे रूपने जघजले तरकोटों में प्रचण्ड गिरता को किसी प्रकार दवा कर पुट-भाक की तरह पक-से रहे हैं, उस समय भी तू जीवन के लिए इतनी दौड़ धूप कर रहा है, क्या यह थोड़ा है ?

जो तुझे इत नरुनूनि में लाया है, जिसने तेरे मृगनयनों के तारों में अपनी विमल ज्योति से सना कर तुझे यह नरीचिका दिखाई है, इत नरीचिका का कारण भी जिसका प्रकाश ही है, वही तेरी दारुण रूपा बुझ कर तुझे पार लगावेगा ।

अनुरोध

हे मन्मथ जगद्विजित के मिली अदृश्य बाने से उठ
कर तुम मरे नमोमस्तुत को छा लेते हो। आनन्दमन्मथ नहीं
मे मरना प्रदान करते हो और मन की झुँझ बरत कर उसे
रुख कर देते हो।

तब मैं तुम्हें एक बार छूँता हूँ। ये मन्मथ मन्मथ
तुम्हारे जल हृदय में तो मनुष्य पर उतरा राहें हैं। तुम इन
जल के सन्तानों में दृष्टि क्यों करते हो ?

मन्मथ, तुम इनके जलगत हृदय में अपनी छाया देकर कर
दुखें होते हो।

मेरा बहाना बनो। एक बार इनके मन प्रदान करो, जो
मैंने हों। और, यह उन नौजवानों के मरुत हृदय में झंझ का
रुख लें।

तुम मरे हो, उन मन्मथ में तुम बिलने लगे हो।

तुम्हारे लिए

मान के लोगों को बहुतेरी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती और वे मॉने मेरे पास आते। मैं द्वार बन्द करके बैठा रहता और वे खटखटा कर लौट जाते। दूसरे दिन, मार्ग में, यदि वे जहना देते तो मैं कह देता कि “मैं ने तो समझा था कि तब होगा।”

यदि कभी भूल से कपाट खुले भी रह जाते तो उनके पैरों में चोंप मुनते ही मैं व्याज-निद्रित हो जाता; या दिया बुझ जाता। जब वे इसकी शिकायत करते तो कह देता कि—“दिन भर का हारा थका रहता हूँ, पड़ते ही सो जाता हूँ।” किंवा “चिन्तावश दीपक घालने की सुध ही न रही।”

अगर कोई और भी पक्षा होता तो वह, जब जहाँ तामना होता, अपेक्षित वस्तु माँगता। पर मैं गिड़गिड़ा कर कह देता—“वह मेरे पास नहीं, घर देख लो। हाय ! तुम्हारी सेवा करने से वञ्चित रहने का मुझे दुःख है।”

इस प्रकार संसार पर मैं ने अपनी कपट-वृत्ति का छाप और व्यय करके अपने निष्कपट-भाव एवं सर्वस्व का रक्षण तथा पोषण किया है। जिससे आज मैं तुम्हारे सामने अपना, सुरक्षित, शुद्ध हृदय से सञ्चित और परिवर्द्धित सर्वस्व लेकर उपस्थित हुआ हूँ।

मृत्यु

मृत्यु ! तुझसे घड़ कर संसार में मेरा और कान है; तू मुझे अनन्त जीवन प्रदान करेगी ।

जब सारा संसार मुझे छोड़ देता है तब तू मुझे अपनाती है, और मुझे जर्जरित पिञ्जर से छुड़ा कर नये नये दृश्य दिगाती है ।

आधि व्याधि की असीम यातना से छुड़ाने के लिए तू ममता के मारे चिरशान्ति का विशाल वितान तानती है ।

जब जब तू मेरे पास आई है तब तब मैं ललक कर तुझसे मिला हूँ । और अपने प्रेम की पूरी परीक्षा दे चुका हूँ । तूने उसमें मुझे पका पाया है और फल में क्या इस धार तू सदैव के लिए मुझे बन्धन-विमुक्त कर देगी ?

उद्धार

दुःख में उद्धिप्त होकर मैंने निश्चय किया कि ऐसे जीवन में मरण भरा ।

पावस में नदी बढ़ कर असीम हो रही थी । महानद भी उसकी प्रतिस्पर्धा न कर सकता था । उसके प्रचल बोग और मुमुक्षु तरङ्गों का क्या कहना । मैंने अपनी नाव खोली और सोचा कि आज जल-समाधि लगेगी ।

नाव पकड़ सागने घाट में पहुँची और वहाँ भेंसा में बकर बाने लगी । लहर के धंरुनों ने उसका चेहरा मोड़ दिया और शांतिता में उसमें पानी भरने लगा । अब मैं अधीर हो पड़ा । पानी में कम घुट कर प्राण निचलने की कल्पना को भी न सह सका ।

आज मुझे जीवन का मोत ज्ञान हुआ । उसमें दुःख कहीं ? दुःख तो जीवन के अभाव में, अहमंगलता में है ।

मैं इसी में भागता था अब इतना दुःखित था । बाप होकर, छिपी प्रकाश शरीर कागज करनी बढ़नी थी, हमने नरक दुःख नहीं जान सकता था, मित्रता आज हम काल में दिन होने के प्रमाण मात्र में हुआ ।

मैंने हृत्त में विष्णु का मूर्तमें कर्म करने का प्रण लिया ।

उस मय मूर्ति मुखों ने मुझे कहा दिया हुआ था, आज उदर हूँ । और, मैं जल को मेरा घर बनाने की चंग लेता

बन । वह किनारे लगी लहो । पर इस बीच में वह मेरे जाल-
बन्धु ने कहा था कि और दूर ही जाने निकल हो गई । इस
तुलना में मेरा बहुत संकोच हुआ हुआ ।

उस वृत्ति के लिए और सिद्ध, कर्मकाण्ड जीवन निता ।

काम वन्द करने का समय

दिन बीता, सन्ध्या आ गई। प्रकृति ने आकाश पर जो कुङ्कुमा चलाया था वह उसके भाल पर गुलाल फैलाकर जाने कहीं अदृश्य हो गया और अब वह, प्रकृति, उस पर चारों ओर बुझा धींट रही है। यह काम वन्द करने का समय है।

भू-मण्डल पर प्रकाश की परिधि प्रतिक्षण सङ्कीर्ण होती जा रही है और अन्धकार की धुँधली छाया उदासी बढ़ा रही है। दिन भर का श्रान्त पक्षि-मण्डल अपने नीड़ों को लौट रहा है। क्या यह काम वन्द करने का समय नहीं है ?

पर यह हो कैसे सकता है। क्या इस निरन्तर कर्मशीला प्रकृति में कोई भी किसी क्षण अकर्मण्य रह सकता है ?

वह लो, मेग मित्र आ रहा है। अन्धकार में से उसकी दीप्त देह निकली पड़ती है। वस, मैं अब यही काम करूँगा कि अपनी दिन भर की करनी पर उसके संग विचार करूँ।

हरिः ॐ तत्सत्

परावलम्ब और स्वावलम्ब

पर्पाहा कैसा सुन्दर राग अलापना है। फोयल का बुदू कूजन कैसा कमनीय है। परन्तु उनका यह क्रम नित्य क्यों नहीं चलता ? पर्पाहे ने अपने सुर्य को बादल के हाथ बेच रक्का है। जश घन पटल उने आकाश को आभूषित करता है तभी उमड़े सूने मन पर भी भाव-पटल उमड़ने हैं और उन्हें वह अपनी तान से व्यक्त करता है। बादल धरस गया, पर्पाहे का गान भी हवा हो गया।

फोयल का हृदय वसन्त से अनुरक्त है। अनुराज ने सत्र सजा कर अपना रूप दिखाया और उसने अपनी हृदय-गाथा सुनानी शुरू की। इधर भीष्म ने इसका राग्यापहरण किया, उधर वह अपना मन भार कर मौन हो बैठी।

पर उषा की यह धान नहीं। वह स्वयं रागवती है। वर्षा हो या शरद, वसन्त हो या भीष्म, उसे सब बराबर। वह तो अपने रंग में मग्न है। नित्य अपना हृदय अनन्त विरह के सामने खोल रखती है और उमी के आनन्द में विह्वल हो जाती है।

काम बन्द करने का समय

दिन बीता, सन्ध्या आ गई। प्रकृति ने आकाश पर जो झुझुना चलाया था वह उसके भाल पर गुलाल फैलाकर जाने वहाँ अदृश्य हो गया और अब वह, प्रकृति, उस पर चारों ओर दुष्टा छाँट रही है। यह काम बन्द करने का समय है।

नू-भण्डल पर प्रकाश की परिधि प्रतिक्षण सङ्कीर्ण होती जा रही है और अन्धकार की धुंधली छाया उदासी बढ़ा रही है। दिन भर का शान्त पक्षि-भण्डल अपने नीडों को लौट रहा है। क्या यह काम बन्द करने का समय नहीं है ?

पर यह हो कैसे सकता है। क्या इस निरन्तर कर्मशीला प्रकृति में कोई भी किसी क्षण अकर्मण्य रह सकता है ?

वह लो, मेरा मित्र आ रहा है। अन्धकार में से उसकी दीप्त देह निकली पड़ती है। घस, मैं अब यही काम करूँगा कि अपनी दिन भर की करनी पर उसके संग विचार करूँ।

हरिः ॐ तत्सत्